

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 31-12-18

कर्ज माफी की राजनीति

संपादकीय



अगले कुछ महीनों में होने वाले लोकसभा चुनावों के पहले किसानों का कर्ज माफ करने के लिए राज्य सरकारों पर दबाव बढ़ता जा रहा है। सभी राज्यों में कृषि ऋण माफ नहीं होने तक प्रधानमंत्री को चैन से सोने नहीं देने वाला कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी का बयान बेहद गैर-जिम्मेदाराना है। वैसे भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) भी अधिक पीछे नहीं है। वित्त मंत्री अरुण जेटली ने इस समाचारपत्र को गत सप्ताह दिए एक साक्षात्कार में यह कहा है कि कृषि ऋण माफी का बोझ उठा सकने वाले राज्यों को इस

दिशा में आगे बढ़ना चाहिए। इसे लोगों को खुश करने वाला बयान ही माना जा सकता है।

कर्ज माफी के ऐसे कदम कृषि ऋण शृंखला में ऊपर से नीचे तक हलचल पैदा करेंगे। इससे किसानों को भी दीर्घावधि का कोई लाभ नहीं होता है। इसके कुछ परिणाम तो दिखने शुरू भी हो गए हैं। मसलन, कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) ने राज्यों को यह सुनिश्चित करने को कहा है कि कर्ज माफी के बाद उसका बोझ अकेले बैंक पर ही न पड़े। नाबार्ड ने यह चेतावनी दी है कि कर्ज माफी के बाद बैंकों को उनकी बकाया राशि फौरन नहीं मिलने पर ऋण आवंटन की समूची प्रक्रिया प्रभावित होगी। समस्या यह है कि कुछ राज्यों में बैंकों ने कर्ज माफी की अधिसूचना के आधार पर अपने बकाया कर्ज को बट्टे खाते में डाल दिया लेकिन राज्यों ने अब तक उनके बकाये का भुगतान नहीं किया है। इससे बैंक दबाव में आएंगे और कृषि क्षेत्र को कर्ज देना कम कर देंगे।

यह सही है कि बैंकों को राजनीतिक मकसद से की गई कर्ज माफी का बोझ नहीं उठाना चाहिए। ऐसा करना न केवल अन्यायपूर्ण है बल्कि यह कृषि ऋण आवंटन में कमी का भी कारण बनेगा जिससे ग्रामीण क्षेत्र का तनाव और बढ़ेगा। लेकिन राज्यों को कर्ज माफी के पहले अपनी राजकोषीय स्थिति का सावधानी से विश्लेषण करना होगा क्योंकि बैंकों की बकाया राशि का भुगतान उन्हें ही करना होगा। इससे राज्य के वित्त पर गहरा दबाव पड़ेगा। तीन हिंदीभाषी राज्यों में जीत के बाद बनी कांग्रेस सरकारों ने किसानों का कर्ज माफ करने का वादा किया हुआ है। मध्य प्रदेश सरकार ने करीब 350 अरब रुपये का कर्ज माफ करने का वादा किया है जबकि राजस्थान सरकार 200 अरब रुपये का कर्ज माफ करेगी। राजस्थान का कर्ज माफी का आकार तो उसके पूंजीगत व्यय से थोड़ा ही कम है। ऐसा होने पर कर्ज माफ करने वाले राज्यों में पूंजीगत व्यय में बड़ी कटौती होगी। समग्र वृहद-आर्थिक स्थिरता एवं वृद्धि की रफ्तार पर इसका गहरा असर दिखेगा। हमें ध्यान रखना होगा कि 14वें वित्त आयोग के बाद केंद्र का पूंजीगत व्यय सभी राज्यों के कुल पूंजीगत व्यय से आकार में कम हो चुका है।

वित्त आयोग की सिफारिशें लागू होने के बाद राज्य सरकारों का पूंजीगत व्यय तेजी से बढ़ा है। गत वित्त वर्ष के संशोधित अनुमानों की तुलना में चालू वित्त वर्ष का पूंजी व्यय 37.5 फीसदी अधिक रहने का अनुमान है। इस तरह

किसानों का कर्ज माफी का वादा करने वाली राज्य सरकारों के सामने एक मुश्किल विकल्प है। उन्हें या तो बैंकों को फंड के लिए तड़पता छोड़ना पड़ेगा या पूंजीगत व्यय में कटौती करनी पड़ेगी या राजकोषीय घाटे के लक्ष्य को बदलना होगा। इनमें से कोई भी विकल्प स्वीकार्य नहीं है और राज्य सरकारों के घाटे की सीमा भी तय है। कर्ज माफी कर सकने वाले राज्यों के लिए भी ऐसी योजना अरुचिकर राजकोषीय गुणा-भाग का सबब बनेगी और उसका नतीजा किसानों समेत सभी हितधारकों के लिए बुरा होगा।

राष्ट्रीय
सहारा

Date: 30-12-18

काबुल पर सबकी निगाहें

डॉ. दिलीप चौबे



अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के सीरिया के बाद अफगानिस्तान से भी अपने चौदह हजार सैनिकों में से सात हजार सैनिकों को वापस बुलाने के फैसले से आने वाले दिनों में इस क्षेत्र में शून्यता पैदा हो सकती है। दक्षिण एशिया में महाशक्तियां अपनी मौजूदगी का विस्तार कर रही हैं, ऐसे में अमेरिकी सैनिकों की वापसी के फैसले के बाद सबकी निगाहें अफगानिस्तान पर लगी हुई हैं। रूस और चार मध्य एशियाई देश-कजाकस्तान, किर्गिस्तान, ताजिकिस्तान, उज्बेकिस्तान समेत चीन, पाकिस्तान, ईरान और भारत सभी के काबुल में कूटनीतिक-राजनीतिक हित हैं। अफगानिस्तान में तालिबान का

असर बढ़ रहा है। यही वजह है कि पिछले दिनों शंघाई सहयोग संगठन (एससीओ) की बैठक में पाकिस्तान ने अफगानिस्तान की राजनीतिक व्यवस्था में तालिबान की भागीदारी का मुद्दा उठाया था।

रूस मानकर चल रहा है कि अफगानिस्तान में अमेरिकी नीति असफल हो गई है। इसलिए वह यहां अपनी सक्रियता बढ़ा रहा है। पिछले महीने रूस की पहल पर मास्को में अफगानिस्तान सरकार और तालिबान के बीच बैठक हुई थी। इस बैठक में भारत, अमेरिका, चीन और पाकिस्तान समेत बारह देशों के प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया था। रूस और पाकिस्तान, अफगानिस्तान में आईएसआईएस के विस्तार से चिंतित हैं। रूस सीरिया में असद सरकार के पक्ष में खुलकर खड़ा हो गया था। उसके इस कदम से आतंकी संगठन इस्लामिक स्टेट (आईएसआईएस) रूसी नेतृत्व से नाराज है। दो हजार सोलह में रूस के सेंट पीटर्सबर्ग मेट्रो में आईएस ने आतंकी हमला करके अपनी मौजूदगी दर्ज कराई थी। हमले के बाद रूस अपनी सुरक्षा को लेकर सावधान हो गया है। रूसी नेतृत्व जानता है कि आईएस ने अफगानिस्तान में विस्तार कर लिया तो वह मास्को और मध्य-एशियाई देशों तक आसानी से पहुंच जाएगा। पाकिस्तान अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा की खातिर हमेशा चाहेगा कि अफगानिस्तान में ऐसी सरकार का गठन हो जिसका इस्लामाबाद के साथ सहानुभूतिपूर्ण रिश्ता रहे। ऐसी सरकार के गठन से अमेरिका उससे नाराज हो भी जाए तो वह परवाह नहीं करेगा।

जाहिर है, यदि ऐसा होता है तो अमेरिका और पाकिस्तान के रिश्ते और ज्यादा खराब हो सकते हैं। इसलिए सुरक्षा की दृष्टि से रूस और पाकिस्तान की साझी चिंताएं हैं, और इस नाते दोनों एक दूसरे का सहयोग करेंगे। दक्षिण एशिया का सबसे शक्तिशाली देश चीन इस क्षेत्र में अपने कूटनीतिक और आर्थिक हितों का विस्तार कर रहा है। इसे देखते हुए सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि बीजिंग अफगानिस्तान में सीमित प्रभाव वाला अपना सैनिक अड्डा स्थापित कर सकता है। रूस अफगानिस्तान की शांति प्रक्रिया में तालिबान को शामिल करने को लेकर जिस तरह अपनी पहल पर बैठकें आयोजित कर रहा है, उससे लगता है कि आने वाले दिनों में शंघाई सहयोग संगठन अमेरिका के अफगानिस्तान से हटने के बाद उत्पन्न होने वाली शून्यता को भरने की जिम्मेदारी ले सकता है। काबुल से अमेरिकी सैनिकों की वापसी भारत के सुरक्षा हितों पर असर डाल सकती है क्योंकि अफगान संकट के समाधान के बारे में नई दिल्ली का रूस तथा ईरान जैसे उसके क्षेत्रीय पारंपरिक सहयोगियों से अलग नजरिया है।

रूस को आईएस का प्रेत डरा रहा है, और वह इससे लड़ने के लिए अफगानिस्तान में तालिबान की भूमिका सुनिश्चित करना चाहता है। इसके लिए भारत का सहयोग चाहेगा। लेकिन देखने वाली बात होगी कि नई दिल्ली किस सीमा तक इसमें शरीक होगा। अफगानिस्तान को लेकर भारत की सुरक्षा संबंधी चिंताएं हैं। भारत हमेशा चाहेगा कि काबुल में ऐसी सरकार का गठन हो जिसमें तालिबान के किसी भी धड़े का हिस्सा शामिल न हो। नई दिल्ली यह भी चाहेगा कि वहां ऐसी सरकार का भी गठन न हो जिसका झुकाव पाकिस्तान की ओर हो क्योंकि यदि अफगानिस्तान और पाकिस्तान की सरकारों के बीच सहयोग होगा तो भारत की सुरक्षा की दृष्टि से खतरा बन सकता है। अगर चीन, रूस और पाकिस्तान की पहल पर अफगानिस्तान में तालिबान की वापसी होती है, तो इसका सीधा असर जम्मू-कश्मीर पर पड़ेगा जो वहां सक्रिय आतंकी संगठनों का हौसला बढ़ाने में मददगार होगा। जाहिर है कि ट्रंप की नई अफगान नीति जहां भारत की चुनौतियां बढ़ाने वाली हैं, वहीं पाकिस्तान को इसका राजनीतिक फायदा मिल सकता है।

जनसत्ता

Date: 30-12-18

संतुलन होगा, तभी लोकतंत्र बचेगा

पी चिदंबरम

लोकतंत्र का मतलब संतुलन ही है। जब यह संतुलन खतरे में पड़ जाता है, या प्रभावित होता है तो लोकतंत्र के अस्तित्व पर सवाल खड़ा हो जाता है। भारत के सामने तो यह सवाल कि क्या भारत में अब लोकतंत्र जीवित रह पाएगा, गहराता जा रहा है। मैं इस लेख में जिन मुद्दों की पड़ताल करूंगा उनमें से हर मुद्दा अपने में ऐसा नहीं भी लग सकता है जो लोकतंत्र के लिए खतरा हो सकता हो और ऐसा भी लग सकता है कि इन मुद्दों का समाधान होगा। हालांकि अगर समाधान नहीं निकला तो एक मुद्दा भी लोकतंत्र को पटरी से उतार सकता है। अगर इनमें से कई मामले अनसुलझे रह जाते हैं तो मुझे यह पक्का भरोसा है कि- जैसा कि स्वतंत्र, उदार और परिपक्व राष्ट्रों में माना जाता है- लोकतंत्र खत्म हो जाएगा।

चुनाव : तेलंगाना में चुनाव नतीजों की घोषणा के बाद राज्य के मुख्य निर्वाचन अधिकारी (केंद्रीय निर्वाचन आयोग का प्रतिनिधि) ने मतदाता सूचियों से 22 लाख मतदाताओं के नाम हटा दिए जाने को लेकर 'माफी' मांगी (आधिकारिक दो

करोड़ तिरासी लाख मतदाताओं का आठ फीसद)। बिना किसी झिझक के माफी मांग ली गई और मामला खत्म हो गया। एक सचेत लोकतंत्र में सभी पार्टियां एकजुट होतीं और लाखों लोगों के साथ इस घोटाले का विरोध करने के लिए सड़कों पर उतरतीं। मुख्य निर्वाचन अधिकारी को इस्तीफा देना पड़ता या उन्हें बर्खास्त कर दिया जाता। केंद्रीय निर्वाचन आयोग के जिन अधिकारियों ने तेलंगाना में मतदाता सूचियों के संशोधन के काम की निगरानी की, वे निलंबित कर दिए जाते। लेकिन इनमें से कुछ भी नहीं हुआ, न ही इसे लेकर किसी में गुस्सा दिखा। हालांकि लोग आहत हैं, फिर भी लोकतांत्रिक रूप से चुने गए मुख्यमंत्री के नेतृत्व में तेलंगाना में सब कुछ फिर से पटरी पर लौट चुका है।

विधायिकाएं : इस सारणी पर नजर डालें। इससे लैंगिक असमानता की स्थिति का पता चलता है, और लगता है कि लैंगिक-समानता वाला समाज बनाने को लेकर कोई भी गंभीर नहीं है। इसके लिए दोषी सभी पार्टियां हैं। राजनीतिक दलों ने कम ही महिला उम्मीदवारों को मैदान में उतारा। पुरुष उम्मीदवारों को 'जिताऊ' होने के आधार पर तरजीह दी गई, या फिर उन्हीं सीटों पर महिला उम्मीदवारों को खड़ा किया जहां पार्टी के जीतने के आसार बहुत ही कम थे। कम महिला विधायक होने का मतलब है महिला मंत्री भी कम होना। मिजोरम में तो कोई महिला विधायक इसलिए भी नहीं है क्योंकि मिजो नेशनल फ्रंट ने एक भी महिला को टिकट नहीं दिया! इसका समाधान आसान है- महिलाओं के लिए विधायिका में कम से कम 33 फीसद आरक्षण हो। यह कोई क्रांतिकारी विचार इसलिए नहीं है, क्योंकि नगर निगमों और पंचायतों के चुनाव में इस तरह के आरक्षण का कानून पहले ही से मौजूद है।

अदालतें : अदालती व्यवस्था ढह चुकी है, और इसमें संदेह है कि वक्त रहते इसे फिर से खड़ा किया जा सकता है। समस्या सिर्फ खाली पड़े पदों की नहीं है, बल्कि इससे भी बड़ी है। इस चरमरा चुकी व्यवस्था के जो दूसरे पहलू हैं, उनमें पुराने ढर्रे वाली न्यायिक प्रक्रियाएं और कामकाज के तौर-तरीके, ढांचागत सुविधाओं की बेहद कमी, आधुनिक तकनीक का इस्तेमाल नहीं होना, अयोग्य महिला व पुरुष वकीलों की भरमार, पेशे को बदनाम करने वालों को खदेड़ने में बार कौंसिल की उदासी और अक्षमता, और हर स्तर पर फैला भ्रष्टाचार। अगर कई मामलों में आज भी न्याय मिल रहा है, तो वह ईमानदार जजों की वजह से मिल पा रहा है। संकट इस बात का है कि ऐसे जज कम होते जा रहे हैं।

जनहित याचिकाएं : गरीब और दबे कुचले लोग जिनकी पहुंच उच्च न्यायपालिका तक नहीं है, उन तक न्याय पहुंचाने के लिए जनहित याचिका जैसा कारगर औजार अब 'तय' नतीजों वाले बदले के हथियार के रूप में तब्दील हो गया है। जनहित याचिकाएं दायर करने वाले कुछ याचिकाकर्ताओं का मकसद संदिग्ध है। जनहित याचिकाओं पर फैसला देते समय अदालतों ने सवालिया वैधता की आदर्श प्रक्रिया को अपना लिया है। इस प्रक्रिया में, उच्च अदालतें क्षेत्राधिकार में जकड़ चुकी हैं, कार्यपालिका की शक्तियों को हड़प लिया है और यहां तक कि विधायिकाओं और संसद के क्षेत्राधिकार का भी अतिक्रमण कर लिया है। इससे यह तो लग सकता है कि 'न्याय हो चुका है', लेकिन इससे कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया को गहरा आघात लगता है और साथ ही न्याय के स्थापित सिद्धांतों को भी। कुछ मामलों में स्पष्ट तौर पर गलत फैसले हुए हैं।

नौकरशाही : हमारे प्रशासन की सबसे बड़ी नाकामी तो परियोजनाओं और कार्यक्रमों को लागू करने और वादों के अनुरूप लाभ पहुंचाने में रही है। बहुत ही कम देखने में आया है जब प्रशासन ऐसी किसी चुनौती (जैसे प्राकृतिक आपदा में राहत पहुंचाने) के लिए खड़ा हुआ हो। लेकिन लोग इससे पूरी तरह अंसंतुष्ट रहे हैं। अगर निर्वाचित राजनेता इसके लिए दोषी हैं तो सीधे तौर पर हमारी नौकरशाही इसकी जिम्मेदार है। नौकरशाह परियोजनाएं और कार्यक्रम तैयार करते हैं, इनमें लगने वाला वक्त और लागत तय करते हैं और इनके क्रियान्वयन के लिए वे सीधे तौर पर जिम्मेदार हैं। फिर भी कई कार्यक्रम

तो पूरी तरह से चौपट हो गए और कड़ियों के नतीजे बहुत ही खराब रहे। हमारे देश में प्रतिभा भरी पड़ी है, लेकिन प्रतिभावान लोग निजी क्षेत्र में या फिर विदेशों में अपनी सेवाएं दे रहे हैं। इस समस्या का हमारे पास कोई समाधान नहीं है और जैसे-जैसे साल गुजरते जा रहे हैं, यह समस्या और गंभीर होती जा रही है।

संस्थान और संगठन : पिछले चार साल में जिस तरह से कई संस्थाओं को चौपट कर दिया, वैसा पहले कभी नहीं हुआ। सीईसी, सीआईसी और आरबीआई के पर कतर दिए गए, या फिर इन्हें झुक जाने को मजबूर कर दिया गया। सीबीआई तो खत्म ही हो गई, सरकार का बदलाव कई और जांच एजेंसियों के ढहने का कारण बनेगा।

कराधान : सामान्य तौर पर कर दरें संतुलित होनी चाहिए और कर प्रशासन को सेवा देना चाहिए। लेकिन ये नियम तो एकदम उलट गए हैं। कर दरें तो अब लूट-खसोट वाली और भेदभावपूर्ण (जैसे जीएसटी) हो गई हैं और कर प्रशासन कर आतंकवाद में तब्दील हो गया है।

प्रधानमंत्री : मौजूदा प्रधानमंत्री सरकार के प्रमुख नहीं हैं, बल्कि वे खुद ही सरकार हैं। बिना संवैधानिक संशोधन के संवैधानिक लोकतंत्र करीब-करीब राष्ट्रपति शासन प्रणाली में बदल चुका है। सारी जांच और निगरानियां खत्म कर दी गई हैं। ऐसा पंगु लोकतंत्र मर जाएगा। भारत में लोकतंत्र सिर्फ तभी बच पाएगा जब हम संतुलन बहाल करेंगे। मैं साल का अंत इस उम्मीद से खत्म करता हूं- अगर सर्दियां आती हैं तो वसंत कैसे दूर रह सकता है?
